शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार, 'फफूँदों' का अनोखा संसार

चेतना खांबेटे

शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार...। यहाँ मैं ईश्वर की नहीं बल्कि फफूँद की बात कर रही हूँ। फफूँद सुनते ही हमें रोटी या ब्रेड पर लगी फफूँद, अचार-मुरब्बे के खुले पड़े मर्तबान में दिखने वाली फफूँद और बारिश के दिनों में तो कपड़ों, जूतों और हर तरफ बिन बुलाए मेहमान के जैसी फैली हुई फफूँद ही दिखने लगती है। कोरोना काल में अपने भयानक पैर पसारने वाली काली और सफेद फंगस भी तो इन्हीं में से हैं। दरअसल, हमें वही दिखता है जो सामने होता है लेकिन हर सिक्के के दूसरे पहलू की तरह फफूँदों का भी एक और पहलू है, जो अक्सर अनदेखा, अनजाना-सा रह जाता है। इस लेख के माध्यम से हम फफूँदों के इस अनोखे संसार के बारे में जानने और समझने की कोशिश करेंगे।

वनस्पतिशास्त्री और अन्य जीव-वैज्ञानिक फफूँद को कवक या फंजाइ भी कहते हैं। इस पूरे लेख में हम कवक या फंजाइ की जगह फफूँद शब्द का ही प्रयोग करेंगे क्योंकि यह शब्द ज़्यादा आसान और जाना-पहचाना लगता है। पारम्परिक वर्गीकरण में फफूँद को पेड़-पौधों के साथ ही पादप समूह में रखा गया था। ये थैलसनुमा होते हैं अर्थात इनमें जड़, तना, पत्तियाँ और साथ ही संवहनीयतंत्र (vascular system) भी नहीं होता। लेकिन सभी फफूँदों में पौधों की कोशिकाओं की तरह सेलूलोज़ की कोशिका-भित्ति न होने और इनके पोषण के खास तरीकों के कारण, इन्हें पौधों के परिवार से बेदखल कर दिया गया, और इनका एक स्वतंत्र समूह बनाया गया। इन्हें अब जीव-जगत के वर्गीकरण में एक अलग जगत या किंगडम के रूप में पढ़ाया जाता है।

फफूँद हमारे जीवमण्डल का एक बड़ा महत्वपूर्ण भाग है। अब तक एक लाख से भी ज़्यादा फफूँदों के बारे में जान लिया गया है लेकिन बात यहीं खत्म नहीं होती है। एक अनुमान के मुताबिक, फफूँदों की लगभग पन्द्रह लाख प्रजातियाँ खोजी जानी बाकी हैं। वास्तव में, विश्व के उन सभी स्थानों में फफूँद पैदा हो सकती है जहाँ भी इन्हें भोजन प्राप्त हो सके। इनकी अधिकाधिक वृद्धि विशेष रूप

से नमी वाली जगहों में, अँधेरे में या मन्द रोशनी में होती है। इनकी बनावट, भोजन का तरीका, प्रजनन, शरीर का संगठन आदि की विशेषताओं और भिन्नताओं को हम आगे जानने की कोशिश करेंगे। यही विविधता इनके रहने की जगहों में भी है। और जनाब, इन्होंने ज़मीन, हवा और पानी के लगभग हर कोने में डेरा डाल रखा है। यहाँ हम इन्हीं बहुरूपिया फफूँदों से जान-पहचान करने वाले हैं।

फफूँद में पोषण

रहन-सहन में विविधताओं की भरमार होने के बावजूद, सभी फफूँदों में कुछ मूल गुणधर्म एक-जैसे ही हैं और तभी तो ये सभी एक ही परिवार के सदस्य हैं। इन मूल गुणधर्मों में भोजन या पोषण का तरीका सबसे प्रमुख है। यह तो हम जानते ही हैं कि सभी जीव अपना भोजन खुद बनाकर या अन्य जीवों से बना-बनाया भोजन लेकर, उसका उपयोग अपने ज़िन्दा रहने के लिए करते हैं। यही प्रक्रिया पोषण कहलाती है। पेड़-पौधों की तरह फफूँद अपना भोजन खुद से नहीं बना सकतीं क्योंकि इनके पास प्रकाश-संश्लेषण के लिए ज़रूरी सामग्री और मशीनें अर्थात क्लोरोफिल और क्लोरोप्लास्ट नहीं हैं और न ही प्राणियों की तरह ये पौधों से अपना भोजन लेकर, उसे पचा सकती हैं। इसीलिए न तो ये स्वपोषी हैं और न ही प्राणी-समभोजी। इस कारण ये अपने पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर रहती हैं; अतः परपोषी (Heterotrophic) कहलाती हैं। ये मृतोपजीवी, सहजीवी, परजीवी आदि कई रूपों में पाई जाती हैं। तभी तो फफूँद है ही खास!

फफूँद अपने शरीर के बाहर मौजूद पोषक तत्व को सोखकर अपने लिए भोजन का इन्तज़ाम करती हैं। अधिकतर फफूँदों के पास इस काम के लिए कुछ खास एंज़ाइम होते हैं जिन्हें ये अपने चारों ओर स्रावित करती हैं। गौरतलब है कि एंज़ाइम या किण्वक जीवों के शरीर में बनने वाले विशेष प्रोटीन होते हैं जो कि जैविक उत्प्रेरक की तरह शरीर में होने वाली जैव-रासायनिक प्रक्रियाओं को तेज़ कर देते हैं, जबकि इसके दौरान वे खुद अपरिवर्तित रहते हैं। ये एंज़ाइम जटिल और बड़े कार्बनिक अणुओं को ऐसे सरल रूपों में बदल देते हैं जिन्हें फफूँद आसानी-से अवशोषित कर सकती हैं। कुछ अन्य फफूँद अपने एंज़ाइम का इस्तेमाल सीधे कोशिकाओं में छेद करने के लिए करती हैं।

कुल मिलाकर फफूँद की विभिन्न प्रजातियों में पाए जाने वाले कई प्रकार के एंज़ाइम जीवित और मृत, दोनों ही ज़रियों से मिलने वाले जटिल रासायनिक पदार्थों का विघटन कर सकते हैं। पूरे जीव-जगत में कुछ जीवाणुओं को छोड़कर, इन पदार्थों को तोड़ पाना किसी के बस

की बात नहीं है। फफूँद भोजन कहाँ से प्राप्त कर रही हैं, इन्हीं ज़रियों के आधार पर इनका पर्यावरण यानी पारिस्थितिकी तंत्र में स्थान या ओहदा तय होता है। फफूँदों के जीवन की अभूतपूर्व सफलता के लिए ये एंज़ाइम एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

फफूँद की बनावट पर एक नज़र

साधारण फफूँद सु-केन्द्रिक अर्थात यूकैरियोटिक होती हैं। ये एककोशिकीय एवं बहुकोशिकीय, दोनों प्रकार की होती हैं। हालाँकि, इनका बहुकोशिकीय जीवन पौधों और जन्तुओं से अलग होता है क्योंकि इनकी कोशिकाओं के बीच की दीवार या तो अधूरी होती है या फिर होती ही नहीं है, जिस कारण इन्हें बहुकेन्द्रीय कहना ज़्यादा बेहतर होगा।

फफूँद की बनावट एककोशिकीय खमीर या फिर बहुकेन्द्रीय धागों के रूप में हो सकती है। इनके जीवन में ये दोनों ही अवस्थाएँ विकसित हो सकती हैं लेकिन केवल एककोशिकीय रूप में अपना जीवन व्यतीत करने वाली फफूँदों की संख्या काफी कम है। फफूँद अक्सर नमीदार वातावरण पसन्द करती हैं इसलिए ये पौधे की कोशिकाओं के अन्दर या जन्तु-ऊतकों में आसानी-से पाई जाती हैं जहाँ इनके लिए घुलनशील पोषक तत्वों का तैयार भोजन उपलब्ध रहता है जिसे ये आसानी-से सोख पाती हैं।

बहुकोशिकीय या बहुकेन्द्रीय फफूँद की बनावट इन्हें अपने फैलाव और जीवन संघर्ष के लिए अनुकूल बनाती है। इनकी कोशिकाएँ धागेनुमा या तन्तुनुमा संरचनाएँ बनाती हैं जिन्हें हाईफी या कवक-तन्तु कहा जाता है। ये छोटे-छोटे कवक-तन्तु या धागे आपस में मिलकर एक बड़ा जाल बनाते हैं जिसे माइसीलियम या कवक-जाल कहा जाता है। यहाँ हमें कवक-तन्तुओं के बारे में एक और

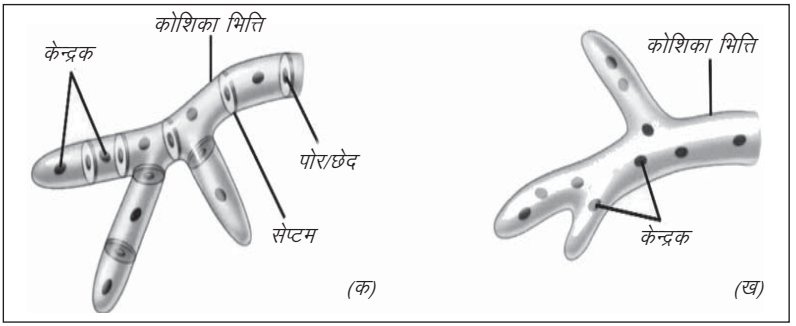

चित्र-1: *हाईफी या कवक-तन्तु के दो प्रकार - (क) सेप्टेट कवक-तन्तु जिनमें कोशिकाओं के बीच आड़ी दीवार पाई जाती है। (ख) सीनो-सायटिक कवक-तन्तु जिनमें कोशिकाओं के बीच कोई दीवार नहीं होती।*

बात जान लेना ज़रूरी है, वह है इनकी कोशिकाओं के बीच की आड़ी दीवार। कोशिकाओं के बीच यदि आड़ी दीवार मौजूद हो तो इन्हें खाँचेदार या सेप्टेट कवक-तन्तु और यदि आड़ी दीवार मौजूद नहीं हो तब इन्हें बिना खाँचे वाली या सेप्टम विहीन या सीनो-सायटिक कवक-तन्तु कहा जाता है। मज़ेदार बात यह है कि इनकी दीवारों में इतने बड़े छेद पाए जाते हैं कि उनमें से कोशिका का हर एक भाग, यहाँ तक कि केन्द्रक भी, आर-पार जा सकता है। तभी तो हम इन्हें बहुकेन्द्रीय कहने पर ज़ोर दे रहे थे।

कवकों की कोशिका-भित्ति में काइटिन नाम की एक जटिल शर्करा पाई जाती है। कीट-पतंगों के बाहरी कंकाल और पंख भी काइटिन के ही बने होते हैं। इस काइटिन की मौजूदगी ही फफूँद की विशिष्ट जीवन-शैली के लिए और भी मददगार होती है, क्योंकि पोषक पदार्थों के अवशोषण के दौरान कोशिका के अन्दर का दबाव काफी ज़्यादा हो जाता है। एक मज़बूत और लचीली कोशिका-भित्ति या दीवार के बिना, यह कोशिका इस दबाव को सह नहीं सकती और गुब्बारे की तरह फूलकर फट सकती है।

इसके अलावा, माइसीलियम (चित्र-2) की बनावट के कारण ही फफूँद की सतह और आयतन का अनुपात अत्यन्त बढ़ जाता है और इन्हें भोजन लेने में और भी आसानी होती है। इस व्यवस्था की विशालता का अन्दाज़ा इस जानकारी से लग सकता है कि केवल एक सेंटीमीटर गुणा एक सेंटीमीटर के वर्ग में 300 सेंटीमीटर क्षेत्रफल की लगभग एक किलोमीटर लम्बी कवक-तन्तु या हाईफी मौजूद रहती है। इस पर

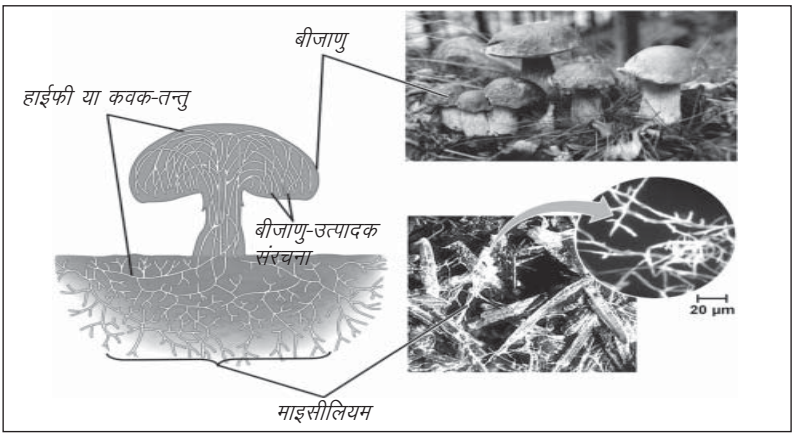

चित्र-2: *बहुकोशिकीय कवक की संरचना और माइसीलियम को दर्शाता चित्र।*

व्यवस्था तो देखिए कि जैसे-जैसे कवक अपना पैर पसारती है वैसे-वैसे प्रोटीन और अन्य ज़रूरी सामान तन्तुओं के बढ़ने वाले अन्तिम सिरे तक पहुँचा दिया जाता है और इस तरह से फफूँद अपनी सारी ताकत एवं रसद का इस्तेमाल अपनी लम्बाई बढ़ाने में करती है।

फफूँद वैसे तो चल-फिर नहीं सकतीं और न ही भोजन और साथी की तलाश में वे उड़ान भरने या बहने जैसी प्रक्रियाओं की मदद ले सकती हैं, लेकिन जैव-विकास के दौरान इन सब प्रक्रियाओं के लिए एक बहुत ही नायाब तरीका विकसित हुआ है इनमें। ये अपने तन्तु के जाल को फैलाकर, अपने सभी मकसदों को पूरा कर लेने में सक्षम हैं।

तो जनाब ये कवक-जाल या माइसीलियम ज़मीन के अन्दर-ही-अन्दर फैलकर कई पेड़ों की जड़ों को एक-दूसरे से जोड़ती हैं और पोषक तत्वों के परिवहन के साथ-साथ अन्य सूचनाएँ भी तेज़ गति से फैला सकती हैं। इसे हम इंटरनेट के www की तर्ज़ पर ही ज़मीन के भीतर का wood wide web कह सकते हैं। ऐसा माना जाता है कि यह पेड़ों के बीच आपसी सम्पर्क बनाए रखने का एक महत्वपूर्ण तरीका है।

फफूँद में प्रजनन के तरीके

सभी सजीवों को अपनी प्रजाति को टिकाए रखने या उसमें निरन्तरता बनाए रखने के लिए उन जैसे ही नए जीवों को बनाना ज़रूरी है। यही तो प्रजनन का मकसद है। अधिकांश फफूँद इसके लिए बीजाणु या स्पोर्स की मदद लेती हैं। यदि आप फफूँद की प्रजनन क्षमता को परखना चाहते हैं तो बस एक रोटी या किसी भी फल का टुकड़ा यूँ ही हवा में खुला छोड़ दीजिए। आसपास फफूँद का नामोनिशान न होने के बावजूद कुछ ही दिनों में आपको उस पर उग आई रेशेदार माइसीलियम दिखने लगेंगी जो कि दरअसल हवा में मौजूद बीजाणुओं से ही यहाँ तक पहुँची हैं (चित्र-3)।

बॉक्स-1

प्रजनन के बारे में जानने से पहले हमें बीजाणु शब्द से रू-ब-रू होना ज़रूरी है। जीवविज्ञान में बीजाणु (spore) लैंगिक व अलैंगिक प्रजनन की एक संरचना है जिसे कोई जीव या जीव-जाति स्वयं को फैलाने या विषम परिस्थितियों में लम्बे समय तक जीवित रहने के लिए बनाती है। बीजाणु बहुत-से पौधों, शैवाल (ऐल्गी), कवक (फंगस) और प्रोटोज़ोआ के जीवन-चक्र का महत्वपूर्ण भाग होता है। हालाँकि बैक्टीरिया (जीवाणु) के बीजाणु किसी प्रजनन चक्र का भाग नहीं होते बल्कि कठिन परिस्थितिओं में बैक्टीरिया को जीवित रखने के लिए एक निष्क्रिय सिकुड़ा ढाँचा प्रदान करते हैं।

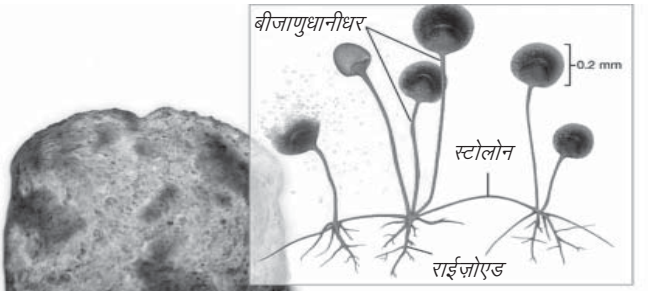

चित्र-3: *ब्रेड पर आम तौर पर उगने वाली फफूँद राइज़ोपस स्टोलोनिफर।*

ये बीजाणु लैंगिक और अलैंगिक, दोनों ही प्रकार से बनाए जा सकते हैं। चित्र-4 में एक सांकेतिक जीवन-चक्र दिया गया है जिसमें फफूँद के लैंगिक और अलैंगिक, दोनों प्रकार के प्रजनन शामिल हैं। अधिकांश फफूँदों में ये दोनों ही प्रकार पाए जाते हैं लेकिन कुछ में कोई एक ही तरीका अपनाने की क्षमता होती है।

हमने फफूँदों की बनावट में पढ़ा कि ये तन्तु-जाल बनाकर ज़मीन के अन्दर फैलती हैं लेकिन जब हमने नर और मादा फफूँद के बारे में सोचा तो पाया कि इनमें अन्तर ही नहीं है। तो फिर लैंगिक प्रजनन होगा कैसे? यह कैसे तय होता है कि दो विभिन्न अनुवांशिक पदार्थ वाले परिवार या पूर्वजों से उत्पन्न फफूँद के जाल ही आपस में प्रजनन के लिए मिल पाएँ जिससे जैव-विकास के लिए ज़रूरी विविधता की सम्भावनाएँ बनी रहें? इस प्रश्न का उत्तर है कि इनमें एक अत्यन्त सटीक एवं विशिष्ट व्यवस्था का विकास हुआ है ताकि ऐसा सम्भव हो पाए। अलग-अलग फफूँद के कवक-जाल एक विशेष खबरी रसायन या फेरोमोन छोड़ते हैं। यदि दो अलग-अलग फेरोमोन का सामना हुआ तो ये परीक्षा में पास हो जाते हैं और यह तन्तु-जाल आपस में मिल जाता है। यह पात्रता-परीक्षा सजीवों में विविधता को टिकाए रखने और उनके विकास को आधार देने के लिए बहुत ही ज़रूरी है।

अलैंगिक प्रजनन आम तौर पर लैंगिक बीजाणु से माइसीलियम अथवा तन्तु-जाल के अंकुरण और वृद्धि के रूप में होता है। बीजाणु की संरचना तथा रूप-रंग फफूँदों के प्रकार और वातावरण के आधार पर तय होते हैं। ब्रेड पर लगने वाली फफूँद हो या जलेबी बनाने के लिए ज़रूरी खमीर, हमारे आसपास दिखाई देने वाली अधिकतर फफूँदों में अलैंगिक जनन से ही तेज़ी-से अपना फैलाव किया जाता है।

फफूँद के इतिहास में ताक-झाँक

जीवाश्म और विज्ञान की

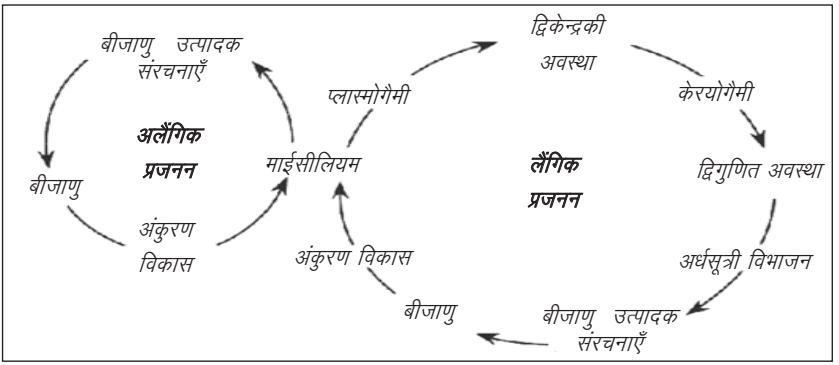

चित्र-4: *फफूँद के सांकेतिक जीवन-चक्र का चित्रात्मक वर्णन। कई फफूँद लैंगिक व अलैंगिक, दोनों ही तरीकों से प्रजनन करती हैं। वहीं कुछ केवल लैंगिक और कुछ अन्य केवल अलैंगिक तरीके से।*

आधुनिकतम तकनीकों से सजीवों के इतिहास के बारे में जानने-समझने में काफी मदद मिली है। इसी आधार पर हमें फफूँदों की प्राचीनता का अन्दाज़ा लग पाया है। इन नई-पुरानी तकनीकों पर आधारित खोजबीन से यह पता चला है कि फफूँद का पेड़-पौधे या बैक्टीरिया के परिवार की तुलना में जन्तुओं से ज़्यादा नज़दीकी रिश्ता है। जैव-विकास के दौरान पेड़-पौधे जब पानी के बाहर ज़मीन पर अपने जीवन को स्थापित करने की कोशिश कर रहे थे तब उन्हें कई तकनीकी दिक्कतों का सामना करना पड़ता था जिसकी वजह से वे अपने लिए खनिज और पानी ले पाने में उतने समर्थ नहीं थे क्योंकि उनमें जड़ों का विकास नहीं हुआ था। लेकिन उस समय भी फफूँद ज़मीन पर पेड़-पौधों की मदद के लिए उनसे पहले ही मौजूद थीं। इन्होंने पौधों के साथ ज़मीन से पोषक तत्वों को सोखकर, उनके लिए खाने-पीने का इन्तज़ाम किया और इस तरह शुरुआती पौधों को ज़मीन पर अपने-आप को टिकाकर रखने में फफूँद मददगार साबित हुईं। और इन्हीं फफूँद की वजह से अनगिनत सजीवों के स्वागत और विकास के लिए हरी-भरी धरती तैयार हुई।

विविधता और वर्गीकरण

जीव-जगत के वर्गीकरण में भले ही फफूँदों को एक अलग जगत के रूप में मान लिया गया हो लेकिन इस समूह को आगे वर्गीकृत करना टेढ़ी खीर से कम न था। पहले फफूँदों को उनके शरीर-विज्ञान, आकार और रंग के अनुसार वर्गीकृत किया गया था। आधुनिक जीव वैज्ञानिक, कवक को वर्गीकृत करने के लिए, आण्विक (मॉलिक्यूलर) आनुवंशिकी और प्रजनन के तरीके पर भरोसा करते हैं। कवक वैज्ञानिक विभिन्न प्रजातियों

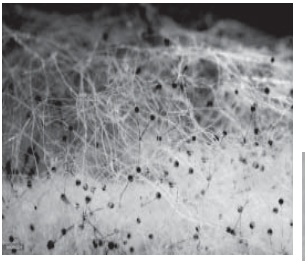

Zygomycota

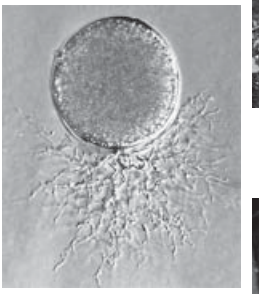

Chytridiomycota

Ascomycota

Basidiomycota

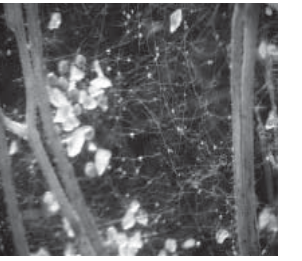

Glomeromycota

चित्र-5: *फफूँद-जगत की विविधता के आधार पर पाँच समूहों में वर्गीकरण दर्शाता उदाहरण-चित्र।*

के नामों को लेकर भी एकमत नहीं हैं। दरअसल, जीव-विज्ञान की नई तकनीकों के विकास के बाद फफूँद के बारे में मिलती जानकारियों के साथ-साथ इनके वर्गीकरण में भी बदलाव होता गया। कुछ मूलभूत मतभेदों के चलते अभी भी फफूँद-जगत में, कहीं-कहीं आप पाँच घरानों (संघों/फाइलम) को शामिल पाएँगे तो कहीं सात घरानों को। एक बात स्पष्ट रूप से जान लेना चाहिए कि फफूँद का यह वर्गीकरण कोई पत्थर की लकीर नहीं है, बल्कि इसके परे भी और सम्भावनाएँ हैं जिसमें आधुनिक जीव-विज्ञान नित नई जानकारियाँ जोड़ता जा रहा है, जिससे वर्गीकरण के स्वरूप में नए-नए बदलाव सामने आ रहे हैं। हम यहाँ फफूँद जगत की फैली हुई असीम विविधता को पाँच समूहों के आधार पर सतही तौर पर ही जानने का प्रयत्न करेंगे (चित्र-5)।

1. **Chytridiomycota** - 1,000 प्रजातियाँ। इस समूह में झील और मिट्टी में बहुतायत से मिलने वाली एककोशिकीय और बहुकोशिकीय फफूँद शामिल हैं। इनमें फ्लेजेला वाले बीजाणु के माध्यम से प्रजनन करने की विशेषता ही इन्हें अन्य फफूँद के परिवारों से अलग पहचान दिलाती है। जैव-विकास के

दौरान यह समूह बाकी फफूँदों से अलग होने वाला पहला समूह था। चित्र में chytridium की बीजाणु बनाने वाली गोलाकार संरचना से बहुकोशिकीय तन्तु-जाल निकलते हुए दिख रहे हैं।

2. **Zygomycota** - 1,000 प्रजातियाँ। इस समूह में ब्रेड और आलू जैसे खाने-पीने वाली चीज़ों पर तेज़ी-से बढ़ने वाली और उन्हें खराब करने वाली फफूँद शामिल हैं। इनके साथ-साथ जन्तुओं में मिलने वाली परजीवी फफूँद और अपघटक फफूँदों को भी इसी समूह में शामिल किया गया है। चित्र में म्यूकर नामक ब्रेड फफूँद का तन्तु-जाल दिखाई दे रहा है।

3. **Glomeromycota** - 160 प्रजातियाँ। इस समूह की अधिकांश फफूँद पेड़ों की जड़ों के साथ जड़ मायकोराइज़ा को बनाती हैं जो ज़मीन से पोषक तत्वों को सोखकर पौधों के लिए उपलब्ध करवाती हैं। संवहनीय पेड़ों की 80% प्रजातियों में कवक-मूल बनाने वाली फफूँद इसी समूह से होती हैं। चित्र में एक पेड़ की जड़ के अन्दर कवक-तन्तु दिखाई दे रहे हैं।

4. **Ascomycota** - 65,000 प्रजातियाँ। इन्हें थैली फफूँद या सैक फंजाइ भी कहा जाता है। और इस विविधता भरे समूह की सदस्य समुद्र, झील, नदियों से लेकर ज़मीन के हर कोने में फैली हुई हैं। इस समूह का नाम इनके प्याले के आकार के प्रजनन अंगों या फ्रूटिंग बॉडी की वजह से पड़ा है। चित्र में सन्तरे के छिलकेनुमा ऑरेंज पील फंगस दिखाई दे रही है।

5. **Basidiomycota** - 30,000 प्रजातियाँ। यह अपघटक फफूँदों का समूह है जिसकी विशेषता इन में पाई जाने वाली द्विकेन्द्रीय और बहुकोशिकीय संरचना है। इसे हम छतरीनुमा मशरूम के नाम से पहचानते हैं। यह अक्सर नमी वाली जगहों पर या पेड़ के पुराने कटे तनों के आसपास दिख जाता है। चित्र में दिखाया गया मशरूम उत्तरी गोलार्ध के जंगलों में मिलने वाली एक आम फफूँद है।

फफूँदों का अन्य सजीवों के साथ रिश्ता: एक पड़ताल

बेहिसाब शान-ओ-शौकत और फैलाव के बावजूद अन्य सभी जीवों की तुलना में फफूँद बेचारी उपेक्षित ही रही हैं। इनके बारे में हम अभी भी बहुत कम ही जान पाए हैं। फफूँदों की रिश्तेदारी हम इन्सानों के अलावा सभी जानवरों, पेड़-पौधों से लेकर सूक्ष्मजीवों तक फैली हुई है। यह आपसी रिश्ते फायदेमन्द या नुकसानदायक, दोनों ही प्रकार के हो सकते हैं। तो अब इनके द्वारा हम अन्य सभी सजीवों के साथ बनाए गए रिश्ते की पड़ताल करते हैं।

परियों की अँगूठी

कई बार घास के मैदान या जंगलों में रातों-रात छोटे-बड़े कुकुरमुत्तों को एक गोले के रूप में अचानक ही उगते हुए देखा गया है। ऐसा लगता है जैसे कई परियाँ गोला बनाकर नाच रही हों। लोगों ने शायद इसी कारण फफूँदों के इस झुण्ड को परियों के छल्लों का नाम दिया होगा। लेकिन इसके पीछे भी फफूँदों का ही हाथ है। बेसिडिओमाइसीट्स समूह के अन्य मशरूम या कुकुरमुत्तों की तरह ये भी सड़ी-गली लकड़ियों, पत्तियों आदि से कार्बनिक पदार्थों को सोख कर अपना भोजन प्राप्त करती हैं। इनके माइसीलियम ज़मीन के अन्दर ही हाईफी-तन्तुओं का फैलाव चारों दिशाओं में बराबरी से करना शुरू करते हैं, जैसे केन्द्रबिन्दु से समान दूरी पर एक गोला बना दिया गया हो। और आखिरकार ये सारे मशरूम इसी गोलाकार सीमा पर एक साथ ज़मीन से बाहर निकलकर प्रकट हो जाते हैं। तो अब हम यह तो कह ही सकते हैं कि ये छल्ले परियों के न होकर फफूँद के ही हैं।

सफाईमित्र 'अपघटक' फफूँद

पेड़-पौधों की कोशिका-भित्ति में पाए जाने वाले सेलूलोज़ और लिग्निन जैसे जटिल कार्बनिक यौगिक आसानी-से विघटित नहीं होते। यौगिकों को सरल अणुओं में तोड़ पाना हर किसी के बस की बात नहीं है। लेकिन फफूँद इस काम में उस्ताद होती हैं। यही नहीं, जेट ईंधन से लेकर ऑइल पेन्ट जैसे कार्बनिक पदार्थों को तोड़ने के लिए कोई-न-कोई फफूँद मौजूद ही है। यही बात जीवाणुओं पर भी लागू होती है। और इसलिए फफूँद और जीवाणु मिलकर पारिस्थितिकी तंत्र में साफ-सफाई बनाए रखते हैं और साथ ही, पेड़-पौधों के लिए ज़रूरी सरलतम अकार्बनिक अणुओं को उपलब्ध करवाते हैं। और इस तरह ये अपने सफाईमित्र 'अपघटक' होने की ज़िम्मेदारी को बखूबी निभाती हैं। इन अपघटकों के बिना कार्बन, नाइट्रोजन जैसे ज़रूरी पोषक-तत्व जटिल कार्बनिक पदार्थों के अन्दर ही बँधकर रह जाते। और अगर ऐसा होता तो ये पेड़-पौधे और इन पर निर्भर अन्य जीव-जन्तु भी नहीं बचते क्योंकि मिट्टी से लिए हुए ज़रूरी पोषक-तत्वों को फिर मिट्टी में मिला देना सम्भव ही नहीं होता। तो हम यह भी कह सकते हैं कि इन 'अपघटकों' के बिना ज़िन्दगी ही खत्म हो जाती।

सबकी सच्ची दोस्त: फफूँद

फफूँदों ने हर सजीव परिवार के साथ लेन-देन के रिश्ते बनाए हैं। ये फफूँद अपनी-अपनी मेज़बान से पोषक-तत्व सोखती हैं और बदले में अन्य कई तरह से सहायता करती हैं। तो इन रिश्तों में ये ताउम्र साथ निभाती हैं। हम भी इन रिश्तों की

बारीकियों को समझने की कोशिश करते हैं। फफूँदों की वफादारी को जानकर आप भी इनके प्रशंसक हो ही जाएँगे।

फफूँद-जड़/कवक-मूल

लगभग सभी संवहनी पेड़ों ने अपनी जड़ों में फफूँदों को रहने की जगह और पनाह दे दी है। और यह फफूँद किसी सच्चे पड़ोसी की तरह इन पेड़ों की जड़ों के साथ इतनी घुल-मिल जाती है कि अपना वजूद भूलकर फफूँद-जड़/कवक-मूल या माइकोराइज़ा के रूप में ही पहचानी जाती है। इनके कवक-तन्तु या हाईफी में पौधों से चिपकने के लिए विशेष संरचनाएँ हॉस्टोरिया के रूप में विकसित होती हैं जो कि विकसित होते हुए पेड़ के साथ पोषक तत्व के आदान-प्रदान या लेन-देन में मददगार होती हैं (चित्र-6)। ये कवक-मूल मिट्टी से फॉस्फेट और अन्य खनिजों को सोखने में उस्ताद होते हैं क्योंकि इनके कवक-जाल या माइसीलियम के विशाल जालनुमा फैलाव की वजह से, ये पेड़ों की जड़ों की तुलना में अधिक कुशलता से पोषक तत्व सोख सकते हैं। फफूँद को अपने इस काम के बदले में पेड़ों से भोजन के रूप में कार्बोहाइड्रेट मिलता रहता है। तो फफूँद और पेड़, दोनों एक-दूसरे से लेन-देन करके, एक-दूसरे की सहायता ही तो करते हैं। यह फफूँद-जड़ पेड़ों की जड़ों के भीतर या बाहर, दोनों तरह से विकसित हो सकती है।

पौधों के अन्दर बसने वाली फफूँद

फफूँद-जड़ या कवक-मूल के साथ-साथ पेड़ों की पत्तियों तथा अन्य भागों के अन्दर रहने वाली एंडोफाइट्स फफूँद भी खास होती हैं। ये एंडोफाइट्स या भीतरी-साथी घास और अन्य पौधों के अन्दर ज़हरीले

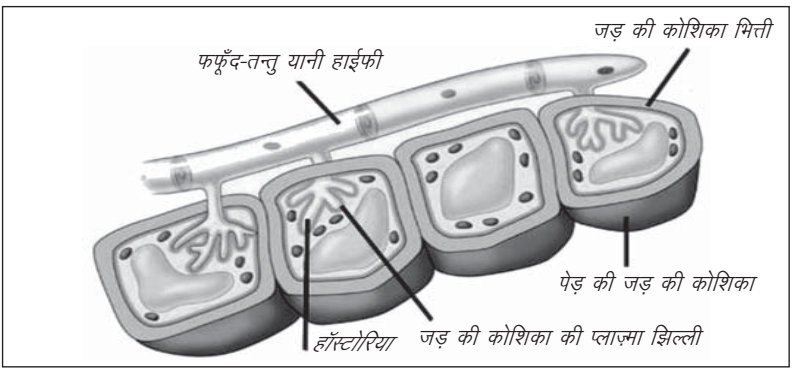

चित्र-6: *विशेष प्रकार के हाईफी या कवक-तन्तु जो अपनी हॉस्टोरिया नामक संरचना के ज़रिए पेड़ की जड़ से चिपक जाते हैं।*

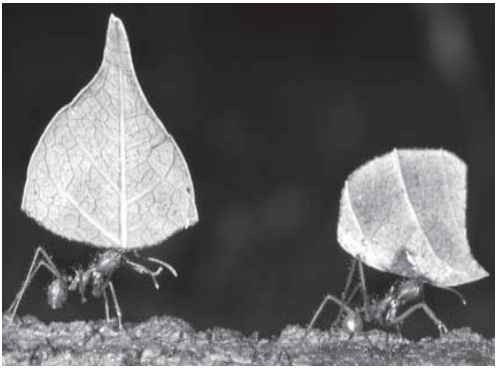

चित्र-7: फफूँद और चींटियों के बीच सम्बन्ध।

पदार्थ बनाकर, उन्हें चरने वाले जानवरों से बचाती हैं और साथ ही उन्हें गर्मी, सूखे और भारी धातु वाले वातावरण में जीने के लिए मज़बूती देती हैं।

फफूँद की खेती: कीटों और फफूँदों का आपसी समझौता

कुछ फफूँद घास चरने वाले जानवरों की आँतों में रहकर जटिल पदार्थों को सरलतम रूप में विघटित करके पाचन की प्रक्रिया को आसान बनाती हैं। चींटियों की कुछ विशेष प्रजातियाँ फफूँद के इसी गुण का फायदा उठाकर, फफूँद की खेती करती हैं।

ऊष्णकटिबन्धीय (Tropical) जंगलों में पाई जाने वाली किसान चींटियाँ, पत्तियों की तलाश में जंगलों को खंगाल डालती हैं। मज़े की बात है कि ये चींटियाँ इन पत्तियों को खुद नहीं पचा सकतीं। ये पत्तों को ढोकर अपने घरौंदों तक ले जाती हैं और वहाँ इनकी तहें बनाकर इकट्ठा करती रहती हैं। फिर इन्हें एक विशेष प्रकार की फफूँद को खिलाती हैं। ये फफूँद इन पत्तियों पर पनपती हैं क्योंकि इन्हें तो पत्तों के रूप में बैठे-बिठाए पोषक तत्व का भण्डार ही मिल जाता है। पत्तों पर फफूँद के बढ़ने के दौरान, इनके कवक-तन्तुओं में विशेष रूप से फूले हुए सिरे बनते हैं जो कि प्रोटीन और कार्बोहाइड्रेट से भरे कैप्सूल्स की तरह ही होते हैं। चींटियाँ मुख्यतः पोषक तत्वों से भरपूर इन्हीं सिरों को खाती हैं। इस तरह फफूँद न केवल चींटियों के लिए इन पत्तियों से लज़ीज़ खाना तैयार करती हैं, बल्कि ये पत्तियों में मौजूद ज़हरीले पदार्थों को भी तोड़कर, पत्तियों को ज़हर-मुक्त कर देती हैं। नहीं तो इन ज़हरीले पदार्थों से चींटियों को नुकसान पहुँच सकता है। यहाँ तक कि चींटियाँ इन ज़हरीले पदार्थों से भरी पत्तियों को खाकर अपनी जान भी गवाँ सकती हैं। किसान चींटियों और उनकी फफूँद-फसल का रिश्ता तो जन्म-जन्मान्तर का है और पाँच करोड़ सालों से ये एक-दूसरे के लिए साथ-साथ बने हुए हैं। और-तो-और, ये एक-दूसरे के बिना जी ही नहीं सकते।

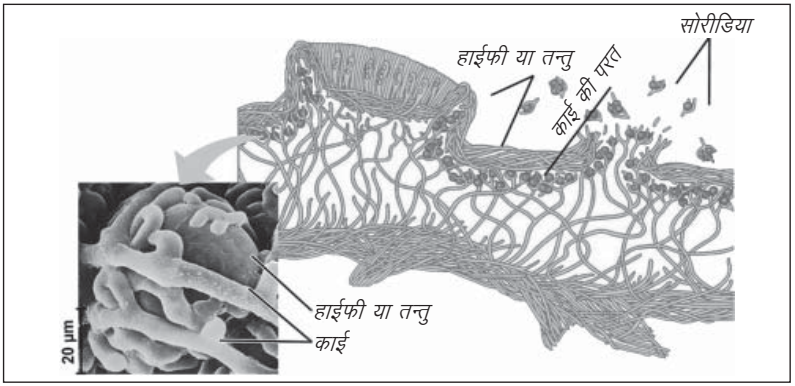

चित्र-8: *एक आम फफूँद की संरचना; एसकोमाईसीट लाइकेन।*

फफूँद और काई का साथ, एक जिस्म दो जान: लाइकेन

सजीवों के बीच सबसे अच्छी जोड़ी का खिताब तो यकीनन लाइकेन* को ही मिलना चाहिए क्योंकि इसे बनाने वाली फफूँद और काई इस तरह आपस में मिल जाती हैं कि अपने-अपने अलग वजूद को छोड़कर इस जोड़ी के रूप में ही जानी-पहचानी जाती हैं। मानो एक जिस्म में दो जानें बस रही हों। अब तक 20,000 से भी ज़्यादा लाइकेन की प्रजातियाँ खोजी जा चुकी हैं और इन सबका स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिकी नामकरण भी किया गया है, मानो ये दोहरे जीव न होकर एक ही हों।

लाइकेन दरअसल फफूँद और काई के बीच बनने वाला सम्बन्ध है जिसमें काई के रूप में एककोशिकीय नीली-हरी काई या बहुकोशिकीय रेशेदार हरी काई हो सकती है। इसमें फफूँद सामान्य तौर पर बाहरी बनावट बनाती है और काई की कोशिकाएँ इसी बनावट के अन्दर की सतह पर अपना बसेरा बनाती हैं।

आकार एवं संरचना के आधार पर लाइकेन को तीन वर्गों में विभाजित किया गया है (चित्र-9)। इनमें क्रस्टोस या पापड़ीनुमा, फोलिओस या पत्तिनुमा तथा फ्रूटीकोस या शाखित रेशेनुमा लाइकेन शामिल हैं।

अधिकांश लाइकेन में प्रत्येक साथी का काम कुछ ऐसा होता है जो कि दूसरे साथी के लिए अकेले अपने दम पर कर पाना नामुमकिन है। नीली-हरी काई का काम सूरज की रोशनी की मदद से कार्बनिक पोषक पदार्थों को बनाकर भोजन सामग्री उपलब्ध करवाना है। जबकि फफूँद अपने

** लाइकेन पर एक विस्तृत लेख 'न फफूँद न काई - एक नई इकाई' संदर्भ अंक-02 (नवम्बर-दिसम्बर, 1994) में पढ़ा जा सकता है।*

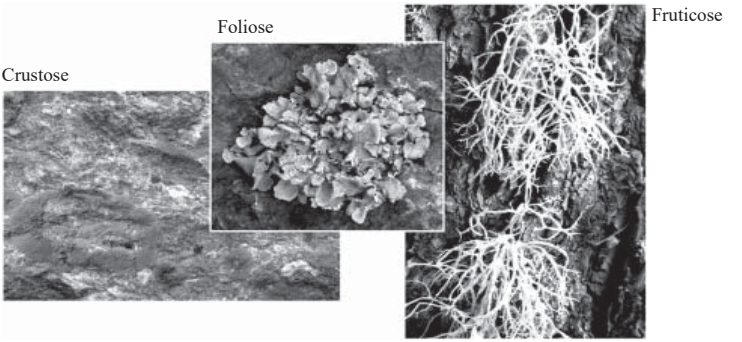

चित्र-9: *आकार एवं संरचना के आधार पर लाइकेन के तीन वर्गों को दर्शाता चित्र।*

प्रकाश-संश्लेषण कर पाने वाले साथी को रहने के लिए उपयुक्त माहौल उपलब्ध करवाती है। तन्तुओं की विशिष्ट बनावट की वजह से गैसों के लेन-देन और अपने साथी की सुरक्षा करने के साथ-साथ फफूँद पानी और खनिजों की आपूर्ति को भी बनाए रखने में सफल होती हैं। ये पानी और खनिज ज़्यादातर हवा की धूल और बारिश से सोखे जाते हैं। फफूँद कुछ विशिष्ट अम्ल भी बनाती हैं जिससे खनिजों का लेन-देन और भी आसान हो जाता है।

लाइकेन प्रकृति की अनमोल देन है। कड़ी बंजर चट्टानों पर सबसे पहले लाइकेन ही पनपती हैं और इन्हें सजीवों के रहने के लिए अनुकूल बनाती हैं। लाइकेन से हमें कई प्रकार की दवाइयाँ, रंग, इत्र और अम्ल तो मिलते ही हैं, साथ ही लाइकेन को कहीं-कहीं भोजन के रूप में खाया भी जाता है। हम जिन लाइकेन से रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में परिचित हैं, उनमें हमारे मसालों का एक महत्वपूर्ण प्रकार पत्थरचट्टा या पत्थर फूल भी है। रसायन विज्ञान की प्रयोगशाला में अम्ल और क्षार की पहचान के लिए प्रयोग में लाए जाने वाले लिटमस, एक विशेष प्रकार की लाइकेन से ही बनते हैं। इनकी उपस्थिति को प्रदूषण-मुक्त जगहों का संकेत भी माना जाता है क्योंकि लाइकेन ऐसी जगह पर नहीं रच-बस पाती हैं जहाँ सल्फर डाइऑक्साइड की अधिकता होती है। जीवाश्म से मिले सबूतों ने इस बात को और भी पुख्ता किया है कि लाइकेन ने ही 42 करोड़ वर्षों पहले अपने कारनामों से पौधों के जीवन के लिए रास्ते खोले थे।

सदाबहार के औषधीय गुण भी फफूँद के ही हैं कमाल

सदाबहार या बारहमासी को हमारे यहाँ सजावटी पौधे के रूप में उगाया जाता है। इसके फूल आम तौर पर गुलाबी, बैंगनी या सफेद रंग के होते

हैं। इसके नाम के अनुसार ही यह पौधा पूरे साल भर हरा-भरा रहता है। यह पूरा-का-पूरा पौधा ही औषधीय गुणों का भण्डार माना जाता है। इसकी पत्तियों से लेकर जड़ों तक, हर एक हिस्सा किसी-न-किसी तरह की बीमारी के इलाज में काम आता है। इस पौधे में कई तरह के महत्वपूर्ण क्षार (अलकेलॉइड्स) पाए जाते हैं जिनका उपयोग दर्द-निवारक से लेकर मधुमेह, मानसिक विकार, उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों के साथ-साथ कैंसर के उपचार में भी किया जाता है। हाल ही में किए गए अध्ययन से यह साबित हो गया है कि सदाबहार के इन गुणों के पीछे भी फफूँदों का ही योगदान है। इन पौधों के अन्दर सहजीवी के रूप में बसने वाली डेढ़ सौ से भी ज़्यादा तरह की फफूँदों की प्रजातियों को इन पौधों की जड़ों और पत्तियों में खोजा जा चुका है। तो जनाब, कहने का मतलब यह हुआ कि फफूँदों ने ही अप्रत्यक्ष रूप से सदाबहार को इतना महत्वपूर्ण औषधीय पौधा बनाने में मदद की है।

पाइलोबोलस: टोपी की बन्दूक से गोली मारने वाली फफूँद

पाइलोबोलस ज़ाइगोमाइकोटा समूह की एक अनोखी सदस्य है। यह गाय, घोड़े आदि मवेशियों के गोबर या मल में पाई जाने वाली एक सामान्य अपघटक फफूँद है। अपने जीवन-चक्र को पूरा करने के लिए इन फफूँदों को मवेशियों के पाचन-तंत्र से होकर गुज़रना ज़रूरी होता है, लेकिन समस्या यह है कि आम तौर पर ये चौपाए जानवर अपने गोबर या मल के आसपास का चारा नहीं खाते। तो फिर पाइलोबोलस फफूँद आखिर इनके पाचन-तंत्र तक कैसे पहुँचती है?

पाइलोबोलस फफूँद ब्रेड पर सामान्यतः उगने वाली काली फफूँदों

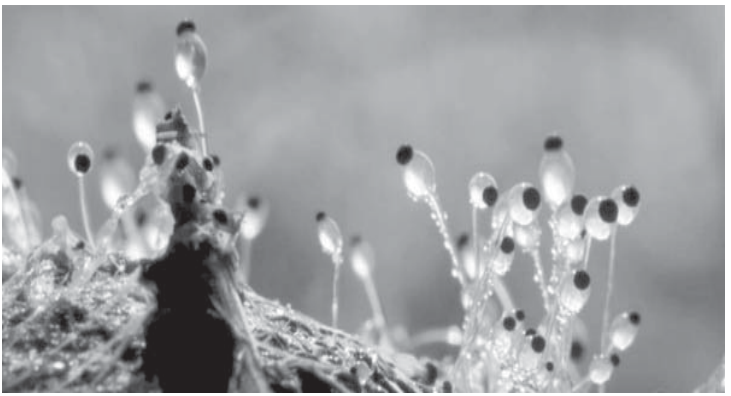

चित्र-10: *पाइलोबोलस फफूँद के तन्तुओं के ऊपरी सिरे पर काली गोलियों के रूप में बीजाणुओं के समूह।*

की तरह ही छोटी होती है, जिनकी ऊँचाई 10 मि.मी. से भी कम पाई गई है। ये अपने कवक-तन्तु या माइसीलियम के ऊपरी सिरे पर बीजाणु का एक समूह बनाती हैं। बीजाणुओं से भरी और चिपचिपे-तरल से लिपटी इन काली गोलियों को वास्तव में बन्दूक की गोली की तरह ही लगभग 90 किलोमीटर प्रति घण्टे की रफ्तार से दागकर अपने मूल स्थान से प्रकाश की दिशा में 10 फीट दूर, घास की पत्तियों तक पहुँचाया जाता है। इसके बाद, घास की पत्तियों से चिपके हुए इन बीजाणुओं को मवेशी अनजाने में ही खा लेते हैं और ये बीजाणु बिना किसी नुकसान के मवेशियों के अन्दर पूरे पाचन-तंत्र की सैर करके आखिरकार गोबर के साथ बाहर आ जाते हैं। और इस तरह, फिर से अपनी आबादी को बढ़ाने में कामयाब हो जाते हैं।

हालाँकि, पाइलोबोलस फफूँद खुद तो जानवरों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाती हैं लेकिन इनके बीजाणुओं से भरी काली गोलियों के साथ-साथ फेफड़ों को नुकसान पहुँचाने वाले परजीवी कृमि भी मेज़बान तक पहुँचने के अपने मकसद को पूरा कर लेते हैं। और इस तरह बेचारी पाइलोबोलस फफूँद अनजाने में ही मवेशियों के लिए परेशानी का कारण बन जाती हैं।

फफूँद का व्यावहारिक उपयोग

फफूँद पारिस्थितिक तंत्र का एक अभिन्न हिस्सा हैं जिनके न होने से सड़े-गले जीवों और उनके अपशिष्टों का विघटन नामुमकिन हो जाएगा और न ही पोषक तत्वों का चक्रीकरण सम्भव होगा। माइकोराइज़ा के बिना 80 से 90% पेड़-पौधे और घास जीवित भी नहीं रहेंगे और फसलों का उत्पादन घट ही जाएगा। मशरूम और अन्य कई फफूँद पोषक तत्वों से भरपूर भोजन के रूप में बड़े चाव से खाए जाते हैं। कई बेकरी और डेयरी उत्पादों के बारे में फफूँद के बिना सोचा भी नहीं जा सकता है। विभिन्न स्वाद और गन्ध वाले 'चीज़' भी फफूँदों की ही देन हैं। इसके अलावा कई तरह की शराब और ब्रेड को बनाने में फफूँदों का उपयोग कई सदियों से चला आ रहा है। यहाँ एककोशिकीय खमीर का ज़िक्र करना तो बनता ही है। *सेक्रोमाइसिस सखाइसी* इन सभी के लिए मददगार है। इसके विभिन्न प्रकारों को Baker's yeast या Brewer's yeast के नाम से भी जाना जाता है। फफूँद 'रोगजनक' तो है पर फफूँद से हमें कई महत्वपूर्ण दवाइयाँ मिलती हैं जिसमें एंटीबायोटिक, प्रतिजैविक खून जमना, उच्च रक्तदाब, कॉलेस्ट्रॉल, मतिभ्रम जैसे कई मर्ज़ों की दवाइयाँ प्रमुख हैं।

फफूँद का जैविक-खेती में कीटनाशकों की तरह भी उपयोग

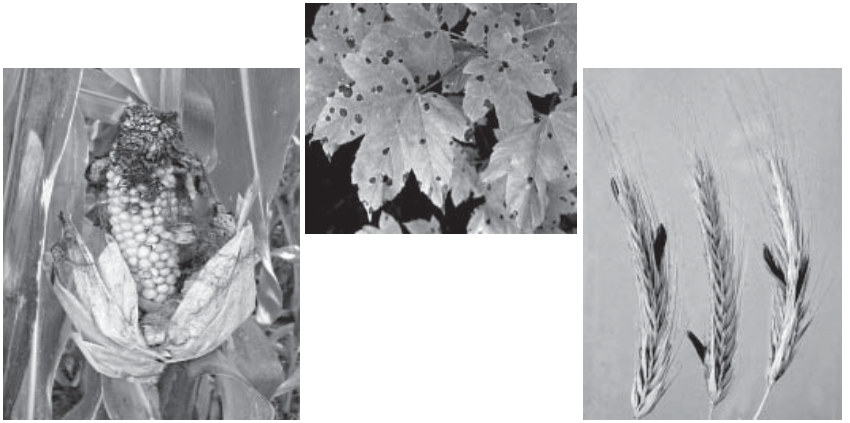

चित्र-11: पेड़ों को नुकसान पहुँचाने वाली फफूँदों के उदाहरण।

किया जाता है, जिसमें नुकसान पहुँचाने वाले कीटों को खत्म करने के लिए, उन पर आश्रित फफूँद का प्रयोग करते हैं। इतना ही नहीं, शोध और अनुसन्धान के लिए मॉडल-जीवों के रूप में फफूँद का उपयोग निर्विवाद है जिसमें अनुवांशिकी, जैव-तकनीकी एवं रोग विज्ञान प्रमुख क्षेत्र हैं जहाँ फफूँद हमारे प्रयोगों में मददगार साबित हो रही हैं।

सिक्के का दूसरा पहलू - परजीवी/ नुकसानदायक फफूँद

फफूँदों के इतने गुणगान करने के बाद हमें इनके दूसरे पहलू पर भी गौर करना ही होगा। अभी तक पहचानी गई फफूँद में से 30% फफूँद किसी-न-किसी तरह से अन्य जीवों के लिए नुकसानदायक हैं। इनके अनचाहे हमले का शिकार केवल हम मनुष्य ही नहीं बल्कि पेड़-पौधे और अन्य जानवर भी होते हैं। फायदेमन्द फफूँद की तरह ये भी अपने मेज़बान से पोषक तत्व लेती हैं, लेकिन बदले में अपने मेज़बान को कोई फायदा नहीं पहुँचातीं। बल्कि इनके पनपने से बेचारे कई जीव मुसीबत में फँस जाते हैं।

हमारी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में काम आने वाली बहुत-सी वस्तुएँ और उपकरण फफूँद की वजह से खराब हो जाते हैं। पौधों पर हमला करने वाली अधिकांश फफूँद एक विशेष प्रकार के रसायन, फफूँद-ज़हर या माइकोटॉक्सिन्स, निकालती हैं जो मनुष्य और अन्य जानवरों के लिए खतरनाक होते हैं।

अधिकांश परजीवी फफूँद पौधों में अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करती हैं। इनके संक्रमण से मुख्यतः ऐंजियोस्पर्म

व जिम्नोस्पर्म प्रभावित होते हैं। गेहूँ का रतुआ तथा कण्डुवा, गन्ने का लाली रोग, कपास (रुई) तथा अरहर के पौधों का उक्ठा (विल्ट) रोग एवं सरसों का श्वेत रतुआ रोग, ये सब कवकों के द्वारा ही होते हैं। कुछ फलों (जैसे सेब, केला) में सड़न भी कवकों यानी फफूँदों द्वारा होती है। निम्न श्रेणी के पौधों में फफूँदो से होने वाले केवल कुछ ही रोगों की जानकारी प्राप्त है।

कुछ फफूँद-रोगों का सम्बन्ध संसार के सबसे भयंकर अकालों से रहा है। आलू में सन् 1943 में फैले लेट ब्लाइट नामक रोग ने आयरलैंड में भयंकर अकाल उत्पन्न किया और लगभग दस लाख लोगों की मृत्यु का कारण बना। सन् 1943 में बंगाल में चावल पर लगे भूरे पर्ण चित्ती (ब्राउन लीफ स्पॉट) रोग से विशाल मात्रा में चावल नष्ट होने के कारण भयंकर अकाल पड़ा जिससे लगभग बीस लाख लोगों की मृत्यु हुई। सबसे ताज़ा उदाहरण इंग्लैंड का है जहाँ के पोल्ट्री फार्म्स में 1960 के आसपास मुर्गियों पर एक फफूँद की वजह से दस लाख मुर्गियों को मारना पड़ा। बाद में, इसके बारे में छानबीन से पता चला कि इन मुर्गियों को खाने में दी जाने वाले मूंगफली दानों में मौजूद एक फफूँद के कारण ऐसा ज़हरीला पदार्थ बना था जिसकी वजह से ये पक्षी मरते जा रहे थे।

इसी तरह का एक और मामला घास के परिवार के एक अनाज - राई का है। पौधों पर एक विशेष फफूँद 'एरगोटस' नामक संरचना बनाती है। यदि इन पौधों से प्राप्त अनाज के आटे को मनुष्य द्वारा उपयोग में लाया जाए तो इसके संक्रमित ज़हर से गैंग्रीन, तंत्रिका एठन, जलन, मतिभ्रम और अस्थाई पागलपन जैसे भयंकर लक्षण दिखाई देते हैं। 944 ईसवी के आसपास फ्रांस में एरगोटिज़्म महामारी के कारण चालीस हज़ार से ज़्यादा लोग मारे गए थे।

पौधों की तुलना में जानवर परजीवी फफूँद के हमलों के लिए अपेक्षाकृत कम संवेदनशील होते हैं। फफूँद की कुछ जातियाँ पशुओं में परजीवी के रूप में रहती हैं तथा उनमें अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न करती हैं। पालतू पशुओं में भी कई प्रकार की फफूँदजनित बीमारियाँ उनके लिए परेशानी का सबब बन जाती हैं। जैसे पक्षी, खरगोश तथा बिल्ली में होने वाले कुछ चर्मरोग, पशुओं में कृष्ण जंघा (ब्लैक लेग) रोग और गाय, भैंस, भेड़, बकरी, सूअर आदि पशुओं में होने वाला 'गण्ठीला जबड़ा' नामक रोग आम तौर पर सुनने में आते हैं। ऐसी ही एक परजीवी फफूँद के हमले की वजह से मेंढक जैसे उभयचरों की 200 से ज़्यादा प्रजातियाँ खत्म हो गईं।

मनुष्य में भी फफूँद की वजह से कई बीमारियाँ मुसीबतें पैदा करती हैं।

किसी फफूँद परजीवी की वजह से हमारे शरीर में होने वाले संक्रमण को माइकोसिस कहा जाता है। फफूँद अक्सर हवा और मिट्टी में मौजूद अपने बीजाणुओं से ही फैलती हैं। यहाँ से वे हमारी साँस में या शरीर की सतह यानी कि चमड़ी के सम्पर्क में आ सकती हैं। लेकिन इस तरह से अन्दर आने वाले बीजाणु के ज़्यादातर प्रकार संक्रमण का कारण नहीं बनते हैं। फफूँद का संक्रमण तब होता है जब शरीर कमज़ोरी के समय फफूँद के सम्पर्क में आता है। यह कमज़ोरी एक कमज़ोर प्रतिरक्षा प्रणाली वाले या ऐसे व्यक्ति में हो सकती है जो अपने शरीर पर इनके उगने के लिए एक गर्म और नम वातावरण प्रदान करता है। कुछ त्वचा संक्रमण के अलावा, फंगल संक्रमण शायद ही कभी एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता है। एक तिहाई फंगल रोग अक्सर ऐसी फफूँद के कारण होते हैं जो हमारे आसपास आम तौर पर पाई जाती हैं। इन्सानों में फफूँद से होने वाली कुछ आम बीमारियाँ हैं -

टिनिया संक्रमण: त्वचा, बाल और नाखूनों की सतह पर फंगल संक्रमण होना बेहद आम है। इसमें दाद, खाज और एथलीट फुट शामिल हैं। अत्यन्त संक्रामक होने के बावजूद, इनसे छुटकारा पाने में एंटीफंगल दवाइयाँ असरदार होती हैं।

कैंडिडिअसिस: कुछ परजीवी फफूँद अवसरवादी होती हैं। ये केवल तभी फैलती हैं जब हमारे शरीर में पाए जाने वाले मददगार सूक्ष्मजीवों या रासायनिक वातावरण में परिवर्तन होता है, या फिर प्रतिरक्षा प्रणाली की मुस्तैदी में ढील मिल जाती है। उदाहरण के लिए, *कैंडिडा अल्बिकन्स* फफूँद हमारे शरीर के कुछ हिस्सों में सामान्य तौर पर रहती है। कुछ परिस्थितियों में, कैंडिडा बहुत तेज़ी-से बढ़ सकती है और रोगजनक बन जाती है जिससे तथाकथित 'खमीर संक्रमण' हो जाता है। कैंडिडा यीस्ट या खमीर शरीर की नम सतहों पर उगती है और योनी के संक्रमण का एक आम कारण है, इसलिए इसे कैंडिडा संक्रमण भी कहा जाता है। इससे मुँह या गले का संक्रमण भी हो सकता है, जिसे 'थ्रश' कहा जाता है। वर्तमान में कोविड के मरीज़ों पर अपना असर दिखाने वाली व्हाइट फंगस भी इसी तरह की फफूँद है।

अस्पेर्गिल्लोसिस: अस्पेर्गिल्लोसिस मिट्टी, वनस्पति के क्षय, इन्सुलेट सामग्री, एयर कंडीशनिंग वेंट्स और धूल में पाई जाने वाली एक आम फफूँद 'अस्पेर्गिल्लस' से होता है। ज़्यादातर मामलों में, अस्पेर्गिल्लस स्पोर्स से कोई नुकसान नहीं होता है। हालाँकि, कुछ लोगों में, अस्पेर्गिल्लस फेफड़ों में संक्रमण पैदा कर सकती है।

कोक्सीडीआइओमायकोसिस: इसके बीजाणु दूषित धूल के साथ साँस के

माध्यम से फेफड़ों में चले जाते हैं जिससे फफूँद विकसित हो जाती है। यद्यपि अधिकांश लोग कुछ हफ्तों में ही ठीक हो जाते हैं।

ब्लैक फंगस या म्यूकरमाइकोसिस: भारत में कोविड-19 की दूसरी लहर के बाद यह नई समस्या उभरकर आई है। इतना व्यापक होने पर भी यह उन्हीं इन्सानों को संक्रमित करती है जिनका प्रतिरक्षा तंत्र कमज़ोर होता है, क्योंकि इसके रोगाणुओं से हमारा प्रतिरोध तंत्र आसानी-से लड़ लेता है। जिनमें कोविड-19, एचआईवी/एड्स और अन्य वायरल बीमारियों, जन्मजात अस्थि मज्जा रोग, गम्भीर जलन, कैंसर और अनुपचारित या अनियमित रूप से इलाज किए गए मधुमेह से पीड़ित लोगों की प्रतिरोधक क्षमता कम हो गई हो, उनमें म्यूकरमाइकोसिस होने का खतरा होता है। स्टेरॉयड प्राप्त करने वाले कोविड-19 रोगियों को विशेष रूप से जोखिम होता है क्योंकि स्टेरॉयड प्रतिरक्षा प्रणाली को दबा देते हैं।

***

इस लेख के माध्यम से हमने फफूँद को कुछ हद तक समझने की कोशिश की है। हम अक्सर फफूँदों के बारे में सोचते हैं कि ये हमारे भोजन एवं अन्य काम की चीज़ों को बर्बाद कर देती हैं और साथ ही, उनकी वजह से कई बीमारियाँ फैलती हैं। लेकिन हमें फफूँद से होने वाले कुछ नुकसानों की वजह से फफूँद से होने वाले व्यावहारिक और व्यावसायिक फायदों को नज़रअन्दाज़ नहीं करना चाहिए।

इस जीव-जगत में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करने वाली और वास्तव में स्पॉटलाइट से दूर रहते हुए पर्दे के पीछे से काम करने वाली, इन फफूँदों की अच्छाइयों की ओर ध्यान देने की ज़रूरत है। इनसे हम आपसी रिश्तों का तालमेल, प्रशंसा की परवाह किए बिना अपना काम मुस्तैदी से करते जाना और आसानी-से हार न मानने जैसे गुण तो सीख ही सकते हैं। और इसीलिए मुझे लगता है कि फफूँदों का अनोखा संसार सच में ही शक्तिशाली... सर्वव्यापी... जीवन का आधार कहलाए जाने योग्य है।

चेतना खांबेटे: केन्द्रीय विद्यालय, इन्दौर में जीव-विज्ञान पढ़ाती हैं।

सभी चित्र: इंटरनेट और *कैम्बल बायोलॉजी* किताब से साभार।

सन्दर्भ:

- Unit5.Chapter 1..Campbell Biology, Tenth_Edition-Reece,Urry, Cain_et_al
- https://hi.wikipedia.org/wiki
- https://opentextbc.ca/biology2eopenstax/chapter/importance-of-fungi-in-human-life
- https://bio.libretexts.org/Bookshelves/Introductory_and_General_Biology